भ्रमजाल से निकल जाता है; नित्य नये रूप बदलने वाली प्रकृति से उसे घृणा होने लगती है और उस आनन्दधाम की ओर वह बढ़ता है जो कभी दुःखी नहीं होता; सारे पापों, जरा, मृत्यु, रोग, शोक, क्षुधा, पिपासा से जो सदा रहित है; सत्यकाम है, सत्यसंकल्प है और एक मात्र अटल आश्रय है। जीवात्मा ने यही पुरुषार्थ करना है कि वह जड़ प्रकृति के तत्त्वों की वास्तविकता को पहचानकर और इससे ऊपर उठकर सत्, चित् आनन्द–तत्त्व से मिलाप कर ले।

ब्रह्मतत्त्व

ब्रह्म सत्, चित्, आनन्द है। इसी के साथ मित्रता प्राप्त करके जीवात्मा जो सत्–चित है, आनन्द को पाता है। इसी तत्त्व की खोज करनी है, इसी को जानना है और इसी से जीवात्मा ने मैत्री करनी है, यतः शरीर तो मरणधर्मा है। **'छान्दोग्योपनिषद्'** में कहा है कि यह स्थूल शरीर ऐसा है, जैसे सिंह के मुख में बकरी। ऐसे ही यह शरीर मृत्यु के मुख में पड़ा है। यही मरणधर्मा शरीर, शरीररहित जीवात्मा का निवासस्थान है इसीलिए यह जीव सुख–दुःख से सदा ग्रस्त रहता है। इसे पूर्ण–आनन्द तब होगा, जब यह आनन्दस्वरूप परमात्मा के साथ मिलेगा। उसके साथ संयोग हो जाने से फिर सांसारिक सुख–दुःख का स्पर्श भी नहीं होता। अब जीवात्मा के लिए सदा के आनन्द का भण्डार खुल जाता है। इसी ब्रह्म–तत्त्व की सामर्थ्य से प्रकृति में गति होती है और प्रकृति जीवात्मा के हित के लिए प्रभु आज्ञा के अनुसार विकृत होकर नाना रूप धारण कर लेती है। ब्रह्मतत्त्व केवल तार छेड़ देता है और जीवात्मा और प्रकृति के 24 तत्त्व खेल खेलने लगते हैं। वह ब्रह्मतत्त्व केवल द्रष्टा बना रहता है; सारे संसार को घुमाता है और आप स्थिर रहता है। संसार का सबसे बड़ा कोष–आनन्द, इसने अपने पास रखा हुआ है। यह ब्रह्मतत्त्व सर्वत्र व्यापक है। इसका गुण 'आनन्द' भी सर्वत्र है परन्तु प्रकृति के बने सारे पदार्थों में इस आनन्द की केवल छाया है। प्रकृति–जन्य तत्त्वों से मिला जीवात्मा भ्रम से, अज्ञान से यह समझ लेता है कि प्रकृति के तत्त्वों में आनन्द है। छाया को वह वास्तविक वस्तु समझ लेता है तो उसके पीछे दुःखी होता है। यह दुःख तभी दूर होता है जब वह इस भ्रम से निकलकर आनन्द के स्रोत ब्रह्मतत्त्व की ओर जाता है।

आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व का मिलाप तत्त्वज्ञान का फल है, पर अनुभवी महानुभावों का यह निश्चित मत है कि पंच भूतों के विवेक ही से उस सत्य अद्वैत आत्मा को जाना जा सकता है। और पंच भूत क्या हैं ? नाशवान्, अस्थिर, जो प्रकृति से बिगड़कर बन गये। इन बिगड़े हुए विकारी भूतों का यही जानना है कि इनकी अपनी निजी सत्ता कुछ नहीं। ये पहले भी नहीं थे और अन्त में भी नहीं रहेंगे। ये मेरे कल्याण के लिए भेजे गये हैं, ये मेरे दास हैं, मैं इनका दास नहीं, फिर ये नाशवान् हैं, मैं सदा रहनेवाला हूँ, ये जड़ हैं, ज्ञानशून्य हैं; मैं चेतन हूँ और ज्ञानवान्। मैं इनके जाल में क्यों फँसा रहूँ ?

आनन्द की सम्पत्ति ब्रह्मतत्त्व के पास

मैं तो आत्मा हूँ। ठीक है कि अल्पज्ञ हूँ, शरीर में बन्दी हूँ, दुःख भोग रहा हूँ और आनन्द की खोज में हूँ, परन्तु हूँ तो आत्मा। मेरा सहयोगी परमात्मा ही है। परमात्मा और जीवात्मा एक ही परिवार के हैं, दोनों ही बड़े ऊँचे घराने के हैं। जीवात्मा के लिए उचित है कि वह अपने साथी चेतन तत्त्व के साथ मिले। उसकी शोभा इसी में है कि अपने जैसी पोजीशनवाले की मित्रता प्राप्त करे। पंच भूतों के पास तो क्या, उनकी माता प्रकृति के पास भी आनन्द नहीं। आनन्द है केवल ब्रह्मतत्व के पास, उसी की मित्रता से यह सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है और किसी भी प्रकार से नहीं। विवेकख्याति की सामर्थ्य जब तक प्रभु–कृपा से साधक को प्राप्त नहीं होती, तब तक इस साक्षात् ज्ञान का प्रसाद नहीं मिलता इसलिए जब तक वह स्थिति न आये, तब तक प्रभु भजन, सत्संग, स्वाध्याय तथा प्रतिदिन के कार्यों के निरीक्षण से पंच भूतों के तत्त्वों की वास्तविकता को देखते रहना चाहिए और बुद्धि–पूर्वक सांसारिक कार्य करते हुए इनसे अलिप्त रहने का यत्न करना चाहिए।

यह तो बतलाया ही जा चुका है कि प्रभु–सामर्थ्य से प्रकृति में जब गति हुई तो महत् प्रकट हुआ, फिर अहंकार हुआ, तब पाँच भूतों की अत्यन्त सूक्ष्म शक्तियाँ उत्पन्न हुई, जिनको पंच तन्मात्रा भी कहा जाता है; फिर स्थूल भूत हुए। इन पंच भूतों ही का सारा संसार है और इन्हीं का संघात यह शरीर है।

'पंचदशी' में कहा है कि :

सदद्वैतं श्रुतं यत्तत् पंचभूतविवेकतः।
बौद्धुं शक्यं ततो भूतपंचकं प्रविविच्यते।।

'श्रुतियों में जिस सत् अद्वैत का प्रतिपादन किया गया है उसको पंच–भूत–विवेक से ही जान सकते हैं। इससे अब पाँचों भूतों का विवेचन किया जाता है।'

क्रमशः

अगस्त (जन्माष्टमी) जन्म दिवस पर विशेष

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

(1905–1995)

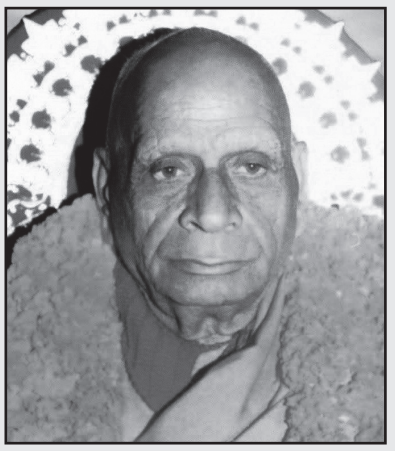

आपका अध्ययन इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुआ। आपने रसायन शास्त्र विभाग से Physico chemical studies of inorganic jellies विषय पर डी.एससी. की उपाधि 1932 ई.में प्राप्त की। 1930 ई. से ही रसायन शास्त्र विभाग में अध्यापन आरम्भ किया। 1962 ई. में विभागाध्यक्ष तथा 1967 ई. में सेवानिवृत्त हुए। आपके निर्देशन में 22 विद्यार्थियों ने डी.फिल. की उपाधि प्राप्त की। आपके 150से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हुए। वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, Founder of Sciences in Ancient India, A Critical study of Brahmagupta and his works, The Bakhshali manuscript (भारतीय अंकगणित की उपलब्ध प्राचीनतम पाण्डुलिपि का गणितीय प्रक्रियाओं के साथ सम्पादन) Coins in Ancient India (मुद्राशास्त्र पर लिखा गया शोधपूर्ण ग्रन्थ) Advance Chemistry of Rare element, रासायनिक शिल्प की एकक संक्रियाएं आदि उनके कुछ प्रमुख ग्रन्थ हैं।

जितने विविध विषयों पर स्वामी सत्यप्रकाश जी का लेखन है शायद ही विश्व के किसी व्यक्ति ने इतना लिखा हो। वेद, शुल्बसूत्र, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, रसायन–विज्ञान, भौतिक–विज्ञान, अग्निहोत्र, अध्यात्म, धर्म, दर्शन, योग, आर्यसमाज, स्वामी दयानन्द, नवजागरण आदि विविध विषयों पर सैंकड़ों ग्रन्थ और लेख स्वामी सत्यप्रकाश जी द्वारा लिखे गये। चारों वेदों का अंग्रेज़ी में अनुवाद (in 23 vols), शुल्बसूत्रों का सम्पादन, The critical study of philosophy of Dayanand और मानक हिन्दी अंग्रेज़ी कोश का सम्पादन उनके द्वारा किये गये उल्लेखनीय कार्य हैं। शतपथ ब्राह्मण पर आपके द्वारा 700 पृष्ठों में भूमिका लिखी गई जो ग्रन्थ को समग्रता से समझने में बहुत सहायक है। विज्ञान परिषद प्रयाग से हिन्दी मासिक विज्ञान पत्रिका का सम्पादन 10 वर्षों तक किया।

विश्वविद्यालय में रहते हुये डॉ. सत्यप्रकाश का लेखन मुख्यतः विज्ञान के क्षेत्र में रहा और संन्यास के बाद का लेखन वैदिक साहित्य, आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द विषयक। स्वामी सत्यप्रकाश जी वैज्ञानिक विचारक चिन्तक संन्यासी थे। वे अपने विचारों को लेखों और भाषणों के माध्यम से व्यक्त भी करते थे। उनके विचार कई बार भिन्नता लिये होते और असहमति का कारण बन जाते परन्तु उस विषय में उनका चिन्तन जारी रहता था।

स्वामी जी की शताधिक रेडियो वार्तायें तथा पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख हैं जिनका संकलन और प्रकाशन अभी शेष है। स्वामी सत्यप्रकाश जी द्वारा अंग्रेज़ी में लिखे ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी हिन्दी भाषी पाठकों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगा। आपने 21 से अधिक देशों की यात्रायें की। आप 1942 ई. में स्वतन्त्रता आन्दोलन में जेल भी गये।

आपका देहान्त 18 जनवरी 1995 ई. में अपने प्रिय शिष्य पं. दीनानाथ शास्त्री जी के आवास– एच.ए.एल. कोरवा–अमेठी, उ.प्र. में हुआ। अन्त्येष्टि आर्य समाज विमान पुरी एच. ए. एल. कोरवा अमेठी के प्रांगण में हुई। अन्त में रेणापुरकर जी के एक श्लोक से अपनी बात को विराम दूँगा!

वैज्ञानिकोऽपि निगमागमपारदृश्वा
साहित्यकाव्यकमनीयकलारसज्ञः।
निष्कामनिर्ममनिरीहयतिप्रकाण्डः
सत्यप्रकाश इति नाम गतःसुधन्यः।।

–पं. दीनानाथ शास्त्री

उर्दू से अनूदित-

'श्रद्धया सत्यमाप्यते' (यजुर्वेद)

प्रभु-भक्ति का प्रथम पाठ

● पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

{यह उर्दू ट्रैक्ट सन् 1961 में प्रकाशित हुआ था। 'जिज्ञासु'}

शिष्य–महाराज मुझे कोई ऐसी विधि बताइये कि ईश्वर दर्शन हो सके।

गुरु–भाई ईश्वर के दर्शन से तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?

शिष्य–मैं अपनी आँख से देखना चाहता हूँ कि ईश्वर कैसा है? जिससे ईश्वर के विषय में कोई संशय शेष न रहे।

गुरु–ईश्वर को तुम कभी आँख से नहीं देख सकते। क्या तुमने हजरत मूसा की कहानी सुनी है?

शिष्य–सुनी तो है। उससे आपका क्या अभिप्राय है ?

गुरु–कहते हैं कि मूसा ने खुदा से यही प्रश्न किया था जो तुम मुझ से कहते हो। "अरणी" ऐ खुदा मैं तुझे देखूँ। तू अपने को मुझे दिखा दे।

शिष्य–हाँ! कहा था।

गुरु–तो परमात्मा ने मूसा को क्या उत्तर दिया था ?

शिष्य–"लनतरानी" तू कदापि मुझे नहीं देख सकेगा। **{मूल में कातिब की भूल से देख सकता छपा है। यह अशुद्ध है। देख सकेगा होना चाहिए। देखिये फीरोज उल–लुगात भाग दो पृष्ठ 350 छठा संस्करण। 'जिज्ञासु'}**

गुरु–ठीक। मैं भी तुम से यही कहता हूँ। "लनतरानी" अर्थात् तुम खुदा को कभी नहीं देख सकोगे।

शिष्य–क्यों ?

गुरु–देखो ! आँख से वह वस्तु देखी जाती है जो आँख के बाहर हो। आँख से कुछ दूर हो। आँख से स्थूल हो। जिसकी कोई भौतिक आकृति हो। परमात्मा न तो आँख से बाहर है, न आँख से स्थूल है, न उसका कोई भौतिक आकार है। तुम अपनी आँख की पुतली को नहीं देख सकते। न आँख के अंजन को देख सकते हो क्योंकि ये तुम्हारी आँख से सर्वथा मिले हुए हैं। परमात्मा भी तुम्हारे हृदयों में है अतः आँखों से नहीं दीखता। अञ्जन व पुतली में कुछ स्थूलता है इसलिए दर्पण में उनका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है परन्तु परमात्मा में स्थूलता भी नहीं। सूक्ष्मवस्तु का प्रतिबिम्ब भी नहीं हो सकता। अतः परमात्मा के देखने के लिए न कोई भौतिक चक्षु है, न कोई भौतिक दर्पण। उपनिषद् में स्पष्ट लिखा है कि परमात्मा का आकार नहीं कि कोई आँख से देख सके। आवाज़ नहीं कि कोई कान से सुन सके। गन्ध नहीं कि कोई नाक से सूँघ सके, यह स्वाद नहीं कि कोई रसना से चख सके, परमात्मा देखने की वस्तु नहीं जानने की वस्तु है। उसे आंख से देखने की इच्छा करना स्वयं को भ्रमित करने वाली बात है। जिन्होंने अपनी अज्ञानता से परमेश्वर की आकृति देखने का प्रयास किया उनको छलिये लोगों ने कोई कल्पित आकृति दिखा कर ठग लिया। मूर्तिपूजा की नींव इसी भूल पर रखी गई स्वार्थी लोगों ने परमेश्वर तक पहुँचा होने का दावा करके जन साधारण के सम्मुख परमात्मा की भिन्न–भिन्न आकृतियाँ प्रस्तुत कीं।

किसी ने कहा उसके चार हाथ हैं और प्रत्येक हाथ में शंख, चक्र, गदा व द्यम है, किसी ने कहा एक लम्बी दाढ़ी वाला शासक है जो सिंहासन पर बैठा हुआ है, किसी ने कहा काली माई समान एक डरावनी स्त्री है। नादान भक्त उनके चक्र में आ गए और उनको स्वप्न में भी वैसी आकृतियाँ दिखाई देने लगी। हजरत सादी शीराजी लिखते हैं–

"बेइल्म नतवां खुदारा शनाख़त।"

अर्थात् अज्ञानी ईश्वर को नहीं पहचान सकता। इसमें इतनी बात और मिली हुई समझ लीजिये–

"बे अकल नतवां खुदारा शनाख़त।"

अर्थात् निर्बुद्धि मूर्ख परमात्मा को नहीं पहचान सकता। जो व्यक्ति किसी वस्तु के गुणों को नहीं जानता वह किसी बात पर विश्वास कर लेता है और उसी को मानने लग जाता है। वह मजहब के विक्रेताओं के हाथ में खिलौना बन जाता है। मानव समाज को ऐसे छल से बचाना भले लोगों का कर्त्तव्य है। आर्यसमाज का एक नियम है, अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए। जब तक संसार में अविद्या रहेगी लोग परमात्मा के दर्शन के लिए भटकते रहेंगे।

शिष्य–तो क्या प्रभु भक्ति को छोड़कर नास्तिक हो जाएँ ?

गुरु–कौन कहता है कि तुम परमात्मा को छोड़ दो। प्रभु तुम्हारे साथ है, तुम उसे छोड़ कैसे सकते हो ? भूल सकते हो। प्रभुभक्ति की वास्तविकता न समझकर जो परमात्मा नहीं उसको परमात्मा समझ सकते हो। हमारा कहना तो यह है कि झूठी प्रभु–भक्ति तजकर सच्ची ईशोपासना सीखो। अधार्मिक नास्तिक मत बनो, धार्मिक बनो, सच्चे धर्मात्मा बनो, ढोंगी धर्मात्मा न बनो। धर्म के नाम पर न तो संसार को ठगो न दूसरों की ठगाई में आओ।

शिष्य–अच्छा आप ही बताएँ कि प्रभु भक्ति कैसे की जाये ?

गुरु–प्राचीन काल में भारतवर्ष में एक बड़े महात्मा हुए हैं उनका नाम है महर्षि पतंजलि। उन्होंने कहा है कि ईश्वर–पूजा के प्रथम पाठ में पाँच बातें हैं उनको करने से मनुष्य का हृदय पवित्र हो जाता है।

दिल के आईना में है तस्वीरे यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली।।

अर्थात् प्यारे प्रीतम का चित्र मन के दर्पण में है। जब जी चाहा भीतर झांक कर देख लिया परन्तु जिसका मनरूपी दर्पण ही मैला हो उसमें तो कोई प्रतिबिम्ब नहीं देखा जा सकता इसलिए पहले तो इस हृदयरूपी दर्पण को पवित्र करना चाहिए। मन के दर्पण को पवित्र करने के ये पाँच साधन हैं।

1. अहिंसा – अर्थात् सब प्राणियों के साथ प्रेम करना और किसी को भी दुःख न पहुँचाना। परमात्मा सब प्राणियों से प्रेम करता है और किसी को दुःख नहीं पहुँचाता। जिसके हृदय में स्वार्थ है वह दूसरों को हानि पहुँचा कर अपनी स्वार्थसिद्धि करना चाहता है। ऐसे व्यक्ति को परमात्मा की अनुभूति नहीं होती।

2. सत्य – सत्य ही मन में हो, सत्य ही वाणी पर हो और आचरण में भी सत्य हो–

सिदक दिल, सिदक जुबां
सिदक उल अमल गर हो बशर।
तो उसे दिखलाई दे हर
शै में अल्लाह जलवागर।।

{ये पंक्तियाँ उपाध्याय जी की स्वरचित हैं। 'जिज्ञासु'}

अर्थात् यदि मन, वचन व कर्म में सच्चाई होगी तो मानव को कण–कण में ईश्वर की सत्ता की अनुभूति होगी।

3. अस्तेय – अर्थात् चोरी न करना। चोरी करना अथवा किसी अन्य के धन सम्पदा को हरना यह एक घटिया काम है, दुष्कर्म है, ऐसा वही करता है जो परमात्मा पर विश्वास न करके अपनी चतुराई पर भरोसा करता है। यजुर्वेद में आता है कि सम्पदा किसी का साथ नहीं देती अतः किसी के माल को लेने का यत्न न करो। जो प्रभु को सर्वव्यापक मानते हैं वे चोरी नहीं कर सकते। जो समझते हैं कि परमात्मा हम को देगा जो हम ने कमाया है, वे चोरी नहीं करते। (कुरान)

4. ब्रह्मचर्य – अर्थात् वासना का वशीकरण करना। मलीन विचार मनुष्य के मन को दूषित कर देते हैं। ऐसे लोग प्रभु दर्शन के पात्र नहीं हैं। एक पुरुष किसी स्त्री को देखकर अथवा एक स्त्री किसी पुरुष को देखकर अपने मन में कुविचार लाते हैं तो उनके मन में एक तूफान–सा उठने लगता है। जिस सरोवर में तूफान उठ रहा हो उसके भीतर तो आप कुछ देख नहीं सकते।

उमर तो सारी कटी इशक बुतां में 'मोमिन'।
आख़री वक्त में क्या ख़ाक मुसल्मां होंगे।।

ब्रह्मचर्य का शाब्दिक अर्थ है प्रभु के साथ विचरण अर्थात् अपने आचरण से यह दर्शाना कि मैं ईशोपासक हूँ। जिस मनुष्य के मन में कुविचार उठते हैं उसके शरीर का मूल्यवान् तत्त्व अर्थात् वीर्य शरीर से निकल जाता है अतः शरीर दुर्बल हो जाता है। मानसिक स्वास्थ्य में विकार आ जाता है और उसका मन ईश्वर–पूजा के योग्य नहीं रहता अतः उन बातों से सावधान रहना चाहिए जिन से ब्रह्मचर्य के खण्डित होने की आशंका हो।

5. अपरिग्रह – अर्थात् सांसारिक पदार्थों से लिप्त होने का यत्न न करना। जो लोग संसार में अधिक फँसे रहते हैं उनके मन में तो सांसारिक वस्तुओं का विचार रहता है, परमात्मा के बारे में चिन्तन करने के लिए मन को समय ही कहाँ। ऐसी सम्भावना शेष नहीं रहती। **लोभी मानस के पास सम्पदा हो अथवा न हो परन्तु उसका मन तो प्रतिक्षण सम्पत्ति के विचार में उलझा रहता है।** वह प्रभु का नाम भी लेता है तो केवल वाणी से।

दिल में ईंटें हैं भरी लब पै खुदा होता है।

{यह पंक्ति उपाध्याय जी की स्वरचित है। 'जिज्ञासु'}

अर्थात् मन में तो राग, द्वेष, लोभ भरा पड़ा है और अधरों पर प्रभु नाम होता है।

ईशोपासना का यह प्रथम पाठ है जिसके पाँच अंग हैं। यदि मनुष्य इनका धीरे–धीरे अभ्यास करे और उन कर्मों से बचा रहे जो इनको व्यवहार में लाने में बाधक हैं तो उसका मन शुद्ध पवित्र हो जायेगा और जब मन पवित्र हो गया तो ईश्वरीय ज्योति स्वतः ही उसके हृदय को ज्योतित करने लगेगी। जिसने इस आरम्भिक पाठ की उपेक्षा की वह कभी प्रभु की पूजा में सफल नहीं हो सकता।

प्रश्न–आपने ये पाँच ऐसी कठिन बातें बता दीं कि इन पर आचरण करना सम्भव नहीं।

उत्तर–परमात्मा की उपासना कोई कूड़ा कचरा तो है नहीं कि बिना परिश्रम के प्राप्त हो जाये। उपासना के लिए तप की आवश्यकता है। तप के लिए संयम व धैर्य चाहिए। आप बाज़ार में यदि किसी मूल्यवान् वस्तु को क्रय करने जाएँ तो उसके लिए मूल्य चुकाना पड़ता है। परमात्मा से अधिक मूल्यवान् क्या हो

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

आर्यसमाज और देश की अन्य संस्थाएँ

● इन्द्र विद्यावचस्पति

इस्लाम में हलचल

19वीं सदी के अन्तिम भाग में इस्लाम के बन्द पानी में भी हलचल उत्पन्न हो गई थी। यो तो इस्लाम एकेश्वरवादी पन्थ होने के कारण सदा ही थोड़ा–बहुत प्रगतिशील रहा है परन्तु 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में उसने जो पलटा खाया, वह दूसरी तरह का था। प्रारम्भ से ही इस्लाम के परिवर्तन अत्यन्त उग्र और प्रायः हिंसापूर्ण होते रहे हैं। 19 वीं शताब्दी के पूर्व भाग में जो वहाबी आन्दोलन उठा था वह अवश्य पुराने ढंग का था। उसके शान्त हो जाने के पश्चात् इस्लाम में जो नया आन्दोलन शुरु हुआ, उसे हम आन्तरिक चिन्तन और सुधार का आन्दोलन कह सकते हैं। उसका स्थूल रूप यह था कि भारत के मुसलमान अपनी उस समय की हीन परिस्थितियों को अनुभव करने और उसके कारणों पर विचार करने लगे थे। सर सैयद अहमद के लेखों को पढ़ें या हाली के मुसद्दस का अध्ययन करें, उनमें यह भावना ओतप्रोत दिखाई देती है कि यदि भारत के मुसलमानों में विद्यमान रूढ़िवाद, अज्ञान और प्रमाद का नाश न किया गया तो वे जीवित रहते हुए भी मृत के समान हो जाएँगे। उनके लिए भारत के समाज में सक्कों, बैरों और खानसामों के सिवा कोई स्थान न रहेगा। 19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में भारतीय इस्लाम के रंग–ढंग में जो परिवर्तन हुए, उनके प्रेरक कारण दो थे।

पहला कारण था अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार जो मुसलमानों में बहुत धीरे–धीरे हो रहा था और दूसरा कारण था आर्यसमाज का मुकाबला। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के 14वें समुल्लास में आलोचना की जो गेंद लुढ़काई थी वह आगे बढ़ने के साथ–साथ अधिक विशाल और तेज़ होती गई। एक अद्वितीय ईश्वर में विश्वास रखने वाली दो सोसायटियों की टक्कर वस्तुतः बहुत भयानक हुई। उसमें बहुत से अप्रिय कांड भी हुए, परन्तु इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि विरोधी मानते हुए भी इस्लाम के प्रचारकों ने आर्यसमाज तथा उसके संस्थापक से कई चीज़ें ग्रहण कीं। कुरान पर जो नए–नए भाष्य होने लगे थे, उनमें प्रायः महर्षि के वेद भाष्य की पद्धति से काम लिया गया था। जिन सुधारों पर आर्यसमाज बल देता था, धीरे–धीरे इस्लाम के कार्यक्रम में भी वे आ रहे थे। {**इस विषय में विशेष सामग्री तो सम्पादकीय में देंगे। कुरान के नए भाष्यों में कबर परस्ती को कुफ्र माना गया है। इस्लाम के शास्त्रार्थ का विषय यह रहा कि अल्लाह जो चाहे कर सकता है। आर्यसमाज का पक्ष था वह हमें अपने राज्य से बाहर नहीं कर सकता। चाहे भी तो हमें नहीं छोड़ सकता। 'हयाते जावेद 'पृष्ठ 782 पर सर सैयद का यह मत दिया गया है, "भला देखें तो खुदा हमको अपने बन्दे तथा अपनी प्रजा होने से बहिष्कृत तो कर दे। (यह) खुदा के सामर्थ्य से बाहर है।" 'जिज्ञासु'**} इस्लाम पर आर्यसमाज का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि उसमें न केवल स्वतन्त्र विचार करने वाले लोग उत्पन्न हो गए अपितु ऐसे लोगों को कट्टर मुसलमान बर्दाश्त भी करने लगे। **आर्यसमाज ने आलोचना और मुबाहसे करके मुसलमानों को मतभेद सुनने का आदि बना दिया** और उनमें अपनी न्यूनताओं पर विचार करने की प्रवृत्ति पैदा कर दी।

ईसाई पादरी

किस मत का पक्ष पालन किया –जैसे प्रारम्भ में एकेश्वरवादी होने के कारण पुराने ढंग के हिन्दुओं का विरोधी समझ कर मुसलमानों ने महर्षि का स्वागत किया था, उसी प्रकार कुछ वर्षों तक ईसाई पादरी भी उन्हें अपना सहायक समझते रहे। परन्तु कुछ ही समय पश्चात् दोनों का भ्रम जाता रहा। महर्षि के मन में रूढ़िवाद और साम्प्रदायिक अन्धता के लिए अणुमात्र भी सहानुभूति नहीं थी। **पौराणिक मत, इस्लाम, ईसायत, अद्वैतवाद आदि मत–मतान्तरों में से किसी का भी पक्षपात नहीं था।** बल्कि एक दिन हिन्दुओं के रूढ़िवाद पर तर्क की कैंची चलाते थे तो दूसरे दिन बाइबल की कड़ी आलोचना करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। ईसायत उस समय शासकों का धर्म था। महर्षि के प्रचार कार्य से ईसाइयत के प्रचार में बाधा पड़ने लगी। तब ईसाई पादरी आर्यसमाज को अपना विरोधी समझने लगे। उनका अधिक क्रोध सत्यार्थप्रकाश पर था जिसके 13वें समुल्लास में बाइबल के कुछ भागों की कड़ी आलोचना की गई है। {**पादरी जे. एल. ठाकुरदास लिखित 'सत्यार्थप्रकाश दर्पण' ऐसी पहली पुस्तक थी। 'जिज्ञासु'**} महर्षि दयानन्द ने और उनके पीछे आर्यसमाज ने कुछ वर्षों तक सभी मत–मतान्तरों की कड़ी आलोचना की। आलोचना में कोई भेदभाव नहीं रखा गया था परन्तु परिस्थिति–भेद से सम्प्रदायों की प्रतिक्रिया में भेद आ गया। सनातन धर्म में मानो समुद्र मन्थन जारी हो गया था। इस्लाम के प्रचारक अपने घर को सँभाल कर संघर्ष भूमि में उतरने की तैयारी करने लगे, तो **ईसाई पादरियों ने सत्यार्थप्रकाश तथा आर्यसमाज के अन्य साहित्य के सम्बन्ध में भ्रम पैदा करने वाली झूठी और खुफिया रिपोर्ट भेज कर सरकारी अफसरों के मन को कलुषित करने का बीड़ा उठाया।** अंग्रेज़ी सरकार की फाइलों में सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के विरुद्ध जो गोला–बारूद भरा जाता रहा और जिसका विस्फोट प्रसिद्ध पटियाला केस में हुआ, उसका प्रारम्भ कुछ ईसाई पादरियों के प्रयत्न से ही हुआ था। इस खुफिया प्रयत्न के साथ–साथ ईसाइयत के प्रचारकों ने शिक्षा, सेवा और प्रचार के नए–नए केन्द्र स्थापित करके भारत में अपने धर्म के प्रचार का जो विस्तार किया उसकी प्रेरणा में विरोधी के रूप में आर्यसमाज का भी भाग था।

इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि विरोधी मानते हुए भी इस्लाम के प्रचारकों ने आर्यसमाज तथा उसके संस्थापक से कई चीज़ें ग्रहण कीं। कुरान पर जो नए-नए भाष्य होने लगे थे, उनमें प्रायः महर्षि के वेद भाष्य की पद्धति से काम लिया गया था। जिन सुधारों पर आर्यसमाज बल देता था, धीरे-धीरे इस्लाम के कार्यक्रम में भी वे आ रहे थे। इस्लाम पर आर्यसमाज का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि उसमें न केवल स्वतन्त्र विचार करने वाले लोग उत्पन्न हो गए अपितु ऐसे लोगों को कट्टर मुसलमान बर्दाश्त भी करने लगे।

राष्ट्रीय आन्दोलन

पूरा स्वराज्य कल्पना से परे – यह बात अब निर्विवाद रूप से मानी जाती रही है कि राष्ट्रीयता के जिस महायज्ञ की पूर्ति महात्मा गान्धी ने की, उसका प्रारम्भ महर्षि दयानन्द ने किया था। महात्मा गान्धी ने भारत में लौट कर देश की राजनीति की बागडोर 1918–1919 में सँभाली थी। उससे पहले की हमारे देश की राजनीति ऐसी नहीं थी कि उससे नाम दिया जा सके। जिन भारतवासियों ने 1885 में बम्बई में राष्ट्रीय महासभा की स्थापना की थी, वे देशभक्त अवश्य थे. परन्तु उनकी राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा सरकारी नौकरियों या ओहदों तक परिमित थी। वे लोग मानते थे कि यह परमात्मा की कृपा है कि भारत पर स्वाधीनताप्रेमी सुशिक्षित अंग्रेज़ी जाति का आधिपत्य हुआ है। पूरा स्वराज्य उनकी कल्पना से बाहर था। उधर महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा था– "कोई कितना ही कहे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत–मतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराए का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता–पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशी राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।" {**कोई कितना भी ऋषि दयानन्द का निन्दक और आर्यसमाज का घोर विरोधी क्यों न हो महर्षि दयानन्द के स्वराज्य विषयक इस अद्भुत वचन को उस युग में अपने विषय का सबसे पहला और अद्वितीय विचार मानेगा। ऋषि दयानन्द ने जिस निडरता से पराधीनता की काली रात्रि में देश को यह घुट्टी पिलाई उसका भी कोई दूसरा उदाहरण न मिलेगा। 'जिज्ञासु'**} **यदि केवल सिद्धान्त की दृष्टि से भी देखें, तो महर्षि की यह स्थापना बहुत गहरे राजनीतिक सत्य से भरी हुई है।** महर्षि के ग्रन्थों में राजनीतिक स्वाधीनता और स्वराज्य की भावना ओत–प्रोत है। महर्षि कोई राजनीतिक कार्यकर्त्ता नहीं थे। वे धर्म के प्रचारक और सुधारक थे। राजधर्म भी उनकी दृष्टि में धर्म का ही एक भाग था। राजधर्म की व्याख्या करते हुए महर्षि ने उन सच्चाइयों को निर्भय और निष्कपट रूप से प्रकट किया तो उस समय की सरकार तो क्या, देश के साधारण राजनैतिक नेताओं के लिए अपरिचित–सी थी। यदि हम राजनीति के प्रकरण में और प्रार्थनाओं में महर्षि के द्वारा प्रकाशित मन्तव्यों को सरल संक्षेप करना चाहें, तो वे चार शीर्षकों के नीचे आ जाते हैं– (1) स्वधर्म, (2) स्वराज्य, (3) स्वदेशी, (4) और स्वभाषा। आर्यसमाज रूपी भवन का निर्माण महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य, सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों की नींव पर हुआ था। उस समय के आर्यजन हर प्रकार की प्रेरणा ऋषि के वाक्यों से ही लेते थे। यह स्वाभाविक ही था कि सामान्य रूप से

उस समय के आर्यसमाजी स्वधर्म के साथ ही साथ स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा के भी भक्त होते। प्रथम युग से ही आर्य जनता में गहरी देशभक्ति की भावना पाई जाती थी।

प्रारम्भ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का आदर्श बहुत ऊँचा नहीं था तो भी उसमें विदेशी राज्य के प्रति विरोध की जो भावना छुपी हुई थी, उसका आर्यसमाजियों के हृदयों पर अनुकूल प्रभाव हुआ। 1888 में इलाहाबाद में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन हुआ उसमें लाला लाजपतराय जी और ला. मुरलीधर जी **{ये लाला मुरलीधार कोई आर्यसमाजी सज्जन नहीं थे। ये राय मुरलीधर नाम के वकील थे। आर्यसमाजी लाला मुरलीधर और थे। 'जिज्ञासु'}** आदि कई प्रमुख आर्यसमाजी प्रतिनिधि बन कर सम्मिलित हुए और पाँच वर्ष पीछे जब यह निश्चय हुआ कि कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में किया जाए, तो जिन महानुभावों ने स्वागत की व्यवस्था में विशेष भाग लिया उनमें राय मूलराज और बख्शी जैसीराम जैसे प्रतिष्ठित आर्यसमाजी भी थे। देशभक्ति एक आर्यसमाजी बालक को जन्म–घुट्टी में पिलाई जाती थी फलतः उसका झुकाव प्रत्येक ऐसी संस्था की ओर रहता था जिसका लक्ष्य अपने देश को विदेशियों के बन्धन से स्वतन्त्र कराना हो।

इस प्रसंग में यह बतला देना आवश्यक है कि यद्यपि कुछ प्रमुख आर्यसमाजी नेताओं ने लाहौर की कांग्रेस में भाग लिया पर सामान्य रूप से अधिकतर आर्यसमाजी उससे अलग रहे, इसके कारणों का विवेचन अपनी आत्मकथा में लाला लाजपतराय जी ने इस प्रकार किया है:

"सन् 88 ई. के बाद कांग्रेस की ओर से मेरी उदासीनता या शिथिलता का कारण मेरे आर्यसमाजी मित्रों की सम्मतियाँ थीं। सन् '89 ई. के बाद कुछ समय के लिए मुझे एक प्रतिष्ठित मित्र की संगत से लाभ उठाने का अवसर मिला। वे कांग्रेस के घोर विरोधी थे, जिसके कारण ये थे:

"(1) कांग्रेस की नींव कुछ अंग्रेज़ों ने डाली है और अंग्रेज़ पक्के देश हितैषी हैं, इसलिए यह कभी संभव नहीं है कि कांग्रेस भारतवर्ष के लिए राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो। भारतवर्ष के शासन से अंग्रेजों को और उनके देश को बहुमूल्य लाभ प्राप्त है। यह हो नहीं सकता कि वह प्रसन्नता से इस देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता दे दें। उन्होंने इस डर से कि कहीं शिक्षित हिन्दुस्तानी कोई गहरा राजनैतिक आन्दोलन इंग्लैण्ड के विरुद्ध न उठावें, हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय को यह काम सौंप दिया कि वे सालभर में दो–तीन व्याख्यान देकर और समाचार पत्रों में अपनी प्रशंसा पढ़कर चित्त प्रसन्न कर लें।

"उन दिनों ये सज्जन प्रत्येक अंग्रेज़ को भारतवर्ष का शत्रु समझते थे और इसलिए उनको इसमें कुछ सन्देह नहीं था कि कुछ अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानियों को एक हानिकारक काम देने के लिए कांग्रेस बनाई है। वे कांग्रेस को न केवल व्यर्थ, किन्तु भारतवर्ष के लिए हानिकारक समझते थे। उनकी यह सम्मति थी कि हिन्दुस्तानियों को शिक्षा से, स्वदेशी के प्रचार से और गुप्त रीति से हथियारों के प्रयोग से अपने आपको बलवान् बनाना चाहिए और उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब उनको अंग्रेज़ों को निकालने के लिए पर्याप्त शक्ति और जनसमूह प्राप्त हो जावे। वे कांग्रेस के स्थान पर गुप्त काम के पक्ष में थे।

"(2) उक्त सज्जन को हिन्दू–मुसलमानों के मेल में विश्वास न था। उनका विचार था कि हिन्दू मुसलमानों के मेल का उद्योग हिन्दुओं के लिए हानिकारक है। हिन्दुओं में एकदिली, धार्मिक उत्साह और धार्मिक संगठन बिलकुल नहीं है। मुसलमानों में ये सब बातें बहुत हैं, इसलिए हिन्दू–मुसलमानों के मेल में जीत सदा मुसलमानों की ही होगी और क्योंकि अभी मुसलमानों की राजनैतिक शक्ति अफगानिस्तान और टर्की आदि में उपस्थित है इसलिए हिन्दू–मुसलमानों के मेल और उद्योग का यह फल होगा कि मुसलमान राजनीतिक रीति से और भी अधिक बलवान् हो जावेंगे। उनकी सम्मति में इस बात की आवश्यकता थी कि हिन्दुओं को पहले बलवान् किया जावे, उनके भीतर जातीय उत्साह उत्पन्न किया जावे, उनको एकता के मार्ग बताये जावें। उनका विचार था कि कांग्रेस का आन्दोलन हिन्दुओं को हिन्दू–सुधार और हिन्दू–एकता के काम से हटाकर एक मूर्खता के काम में डाल देगा और इससे हानि हिन्दुओं को होगी। उनका यह विचार था कि राजनीतिक आन्दोलन से अंग्रेज़ों के दिलों में हिन्दुओं की ओर दुर्भाव उत्पन्न हो जावेंगे और वे न केवल हिन्दुओं के मार्ग में रुकावट डालेंगे, परन्तु उनको कई प्रकार की हानियाँ पहुँचाएँगे।

"साधारण तौर पर लाहौर के आर्यसमाजी नेताओं की यही राय थी। कुछ तो यह समझते थे कि आर्यसमाजियों को अपना सारा समय आर्यसमाज को देना चाहिए और आर्यसमाज से बाहर कोई सार्वजनिक काम नहीं करना चाहिए। कुछ का यह भी विचार था कि राजनीति में आर्यसमाजियों के अधिक भाग लेने से सरकार आर्यसमाज से बिगड़ जायेगी और आर्यसमाज के काम में विघ्न डालेगी।"

लाला जी ने परिस्थिति का जो विवेचन किया है वह मुख्य रूप से आर्यसमाज के उस भाग से सम्बन्ध रखता है, जिसे कॉलेज पार्टी के नाम से पुकारा जाता था। महात्मा पार्टी की मनोवृत्ति में कुछ भेद था। प्रचलित राजनीति से उदासीन तो वे भी थे, परन्तु उनकी विचार परम्परा भिन्न थी। **सद्धर्म प्रचारक पत्र को हम उस पार्टी का षोडशकला–सम्पन्न प्रतिनिधि मान सकते हैं।** उसके सम्पादक महात्मा मुन्शीराम जी सम्पादकीय स्तम्भ में राजनीति के सम्बन्ध में प्रायः सम्मति देते रहते थे। **{पं. इन्द्रजी का यह कथन अत्यन्त मार्मिक व मौलिक है। यद्यपि इस 'षोडशकला कला–सम्पन्न प्रतिनिधि' के एक–एक अङ्क का संकलन करके एक ग्रन्थ बनाने का विचार किसी आर्य को न सूझा तथापि इस सेवक ने 'जीवन यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द' ग्रन्थ में ऐसे कई उद्ध रण दिये हैं। आज जीवन की साँझ में इस टिप्पणी को लिखते हुए ऐसी एक पुस्तक लिखने का मत तो बनाया है, देखें आगे क्या होता है? –'जिज्ञासु'}** उनकी आलोचना में कांग्रेस के हिन्दू–विरोधी होने की चर्चा नहीं होती थी क्योंकि महात्मा पार्टी के लोग हिन्दू शब्द को ही पसन्द नहीं करते थे। वे अपने को आर्य कहते थे। उन लोगों का विचार था कि मुसलमान विजेताओं ने हिन्दू अर्थात् गुलाम समझ कर भारतवासियों को इस नाम से पुकारना शुरु किया था। इस विचारधारा के कारण उनमें साम्प्रदायिकता की मात्रा कम थी। वे तत्कालीन राजनीति के प्रति अपनी उपेक्षा का यह कारण बतलाते थे कि कांग्रेस की नीति में धार्मिकता का अभाव था। उनका प्रस्तावों, व्याख्यानों और डेपुटेशनों पर विश्वास नहीं था और न ही वे आतंकवाद पर भरोसा रखते थे। कांग्रेस के प्रति उनकी उपेक्षा का मूल कारण एक अस्पष्ट परन्तु गहरा आदर्शवाद था। एक अंग्रेज ने लिखा था– **"किसी भी आर्यसमाजी की खाल को खुरच कर देखो तो अन्दर छुपा हुआ क्रान्तिकारी देशभक्त लिखा हुआ दिखाई देगा।"** वह बात सच थी। जो व्यक्ति महर्षि दयानन्द के उपदेशामृत से पला हो वह दासता से घृणा करे और स्वराज्य की अभिलाषा रखे, यह तो स्वाभाविक ही था तो भी उस समय कुछ व्यक्तियों को छोड़कर आर्यसमाज के सभासदों ने कांग्रेस के वाचिक आन्दोलनों में पूरा भाग नहीं लिया। इसके अनेक कारण थे। लम्बे अनुभव की दृष्टि से तो वे अनुचित भी नहीं मालूम होते। समय आया जब कांग्रेस में आदर्शवाद ने प्रवेश किया और इतिहास साक्षी है कि इस समय स्वाधीनता के संग्राम में आर्यसमाजी किसी से पीछे नहीं रहे।

साधारण तौर पर लाहौर के आर्यसमाजी नेताओं की यही राय थी। कुछ तो यह समझते थे कि आर्यसमाजियों को अपना सारा समय आर्यसमाज को देना चाहिए और आर्यसमाज से बाहर कोई सार्वजनिक काम नहीं करना चाहिए। कुछ का यह भी विचार था कि राजनीति में आर्यसमाजियों के अधिक भाग लेने से सरकार आर्यसमाज से बिगड़ जायेगी और आर्यसमाज के काम में विघ्न डालेगी।

इस प्रसंग में महर्षि के निकटतम शिष्य श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा की चर्चा करना अत्यन्त आवश्यक है। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा विलायत जाने से पहले महर्षि के विचारों से पूरी तरह प्रभावित हो चुके थे। उन्हें विदेश जाने की प्रेरणा मुख्य रूप से महर्षि से ही मिली थी। लन्दन जाकर उन्होंने आर्यसमाज के विचारों का प्रचार आरंभ कर दिया था। लन्दन में आर्यसमाज का सूत्रपात उन्होंने किया। 1905 में उन्होंने **'इण्डिया हाउस'** नाम के भवन में **'होमरूल सोसायटी'** की स्थापना की। सोसायटी के सभापति वे स्वयं थे। आपने **'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट'** नाम का एक पत्र भी निकाला जो राजनीति में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचारक था। इसके एक अंक का मूल्य एक आना रखा गया था। वर्मा जी के चारों ओर शीघ्र ही देशभक्त भारतीय नौजवानों का एक बड़ा समुदाय इकट्ठा हो गया, तब अंग्रेज़ी सरकार ने घबराकर उन्हें तंग करना शुरु किया। वे लन्दन को छोड़कर पेरिस चले गए जहाँ से वे यूरोप में रहने वाले भारतीय छात्रों को भरपूर आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त क्रान्तिकारी दलों का संचालन भी करते रहे। उन्हें हम भारत की तत्कालीन राजनीति को आर्यसमाज की देन कह सकते हैं।

'आर्यसमाज का इतिहास' से साभार

सही राष्ट्रवादी स्वामी श्रद्धानन्द

● पं. क्षितीश वेदालंकार

अब्दुल रशीद नामक मुस्लिम हत्यारे ने छल से रुग्ण स्वामी श्रद्धानन्द के निवास पर गोली मार कर उनकी हत्या कर दी। इससे बलिदानी श्रद्धानन्द तो अमरहुतात्मा बन गये, पर अब्दुल रशीद हत्यारे का हत्यारा ही रहा और उसे फाँसी मिली। पर अपने आपको राष्ट्रवाद का हामी कहने वालों ने तभी से स्वामी श्रद्धानन्द को साम्प्रदायिक–शिरोमणि के रूप में प्रचारित करना शुरु कर दिया। यों भी आर्यसमाज का इतिहास सदा से बलिदानों का इतिहास रहा है और इसी कारण बहुत से तथाकथित राष्ट्रवादी नेता कभी–कभी आर्यसमाज को भी साम्प्रदायिक कहने से बाज नहीं आते।

सच तो यह है कि कांग्रेस से लेकर अन्य सभी राजनीतिक दलों में राष्ट्र और राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में एक सर्वथा ग़लत, अयथार्थ और मनमानी अवधारणा घर कर गई है। उस अवधारणा के पीछे न कोई तर्क है, न इतिहास। आश्चर्य है कि आजकल के अंग्रेज़ी शिक्षा–दीक्षित तथाकथित बुद्धिजीवी भी, जो समाचार–पत्रों से लेकर सभी आधुनिक संचार साधनों पर छाये हुए हैं, उसी ग़लत अवधारणा का प्रचार करते नहीं थकते और अपने से भिन्न तर्कशुद्ध विचार वालों को तुरन्त 'साम्प्रदायिक' और 'प्रतिक्रियावादी' कहने लगते हैं। आजकल की राजनीति में उक्त दोनों शब्द ही अपने प्रतिपक्षी के लिए गाली के रूप में व्यवहार किये जाते हैं।

अब समय आ गया है कि राष्ट्रहित के चिन्तक सभी विचारकों को राष्ट्र और राष्ट्रवाद की सही अवधारणा पर राष्ट्रीय स्तर पर बहस चलानी चाहिए और इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए जिससे छद्म–राष्ट्रीयता की पोल खुल सके। कई सही राजनैतिक नेताओं ने सार्वजनिक रूप से इस विषय पर खुलकर बहस और विचार–विनिमय का आह्वान भी किया है, किन्तु कोई राजनीतिक दल और उनके पिछलग्गू स्वार्थान्ध बुद्धिजीवी इसके लिए कभी तैयार नहीं होते क्योंकि अपने अन्तःकरण में वे भी जानते हैं कि उनकी राष्ट्र के सम्बन्ध में अवधारणा यथार्थ पर आधारित नहीं है। इसीलिए राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के सम्बन्ध में उनके विचार अत्यन्त भ्रामक हैं और उनकी समस्त प्रवृत्तियाँ राष्ट्र को विघटन की ओर ले जाने वाली सिद्ध होती हैं। देश की आधुनिक दुर्दशा का यह प्रबल वैचारिक विभ्रम है।

इन तथाकथित राष्ट्रवादी बुद्धि जीवियों के कई वर्ग हैं। एक वर्ग वह है जो यह मानता है कि इस देश में मुसलमानों के आगमन के बाद से ही देश का राष्ट्र के रूप में उभरना शुरु हुआ। स्वयं भारतीय दूरदर्शन इस बात का निस्संकोच प्रचार करता रहा। पाठक भूले नहीं होंगे, जब प्रायः प्रतिदिन दूरदर्शन राष्ट्रीयता के नाम पर यह शेर प्रचारित करता था :

सरजमीने हिन्द पर,
अखलाके आवामे फिराक।
काफिले बसते गए,
हिन्दोस्तां बनता गया।।

कोई इन इतिहास के पण्डितों से पूछे कि इन हमलावर मुस्लिम काफिलों के आने के बाद से ही हिन्दोस्तान का निर्माण शुरु हुआ था, तो वे कौन से हिन्द की सरजमीन पर हमला करने आए थे? क्या जिस तरह कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की थी, उसी तरह इन मुस्लिम काफिलों ने हिन्दुस्तान की खोज की थी? उससे पहले संसार के मानचित्र में उसका कोई स्थान नहीं था। आश्चर्य तो इस बात का है कि कोलम्बस भी वास्तव में हिन्दुस्तान को जानने के लिए ही निकला था, पर वह पहुँच गया अमेरिका। इसीलिए उसने मूल अमरीकी आदिवासियों को ***'रैड इंडियन'*** के नाम से सम्बोधित किया था।

इन छद्म–राष्ट्रवादियों का एक वर्ग वह है जो अपने अंग्रेज़–आकाओं द्वारा लिखित इतिहास की पुस्तकों को पढ़कर यह कहता है कि अंग्रेज़ों के आने से पहले यह देश एक राष्ट्र कभी रहा ही नहीं। अंग्रेज़ी ने, अंग्रेज़ी शिक्षा ने, अंग्रेज़ों ने और उनकी चलाई रेलों ने और डाक–व्यवस्था ने ही इस देश को एक राष्ट्र का रूप दिया। इसी वर्ग में एक उपवर्ग ऐसा है जो आज भी भारत को एक राष्ट्र कहने के बजाए अनेक राष्ट्रों का समुच्चय और उपमहाद्वीप कहने में गर्व अनुभव करता है। इस उपवर्ग में अधिकांश वामपंथी बुद्धिजीवी शामिल हैं।

इन राष्ट्रवादियों का एक अन्य वर्ग वह है जो यह मानता है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ही सारे देश में स्वतंत्रता आन्दोलन चलाकर इसमें एक राष्ट्र की भावना पैदा की है। पर अब महात्मा गांधी को भी धराधाम से गए 43 वर्ष हो रहे हैं, तो इस वर्ग में उस समय के कुछ स्वतंत्रता सेनानी ही शेष रह गये हैं। **{यह लेख दिसम्बर 1991 में लिखा गया था–सम्पादक}**

शेष आधुनिकतम बुद्धिजीवी वर्ग वह है जो यह कहते नहीं अघाता कि असली राष्ट्र–निर्माता केवल पं. जवाहर लाल नेहरु थे या नेहरु–वंश के उत्तराधिकारी हैं, जिनमें इन्दिरा गांधी और राजीव गांधी शामिल हैं। यह वर्ग अभी तक यही स्वप्न देखता है कि एक दिन सोनिया गांधी राजनीति में आएँगी, क्योंकि वही अपने नेहरु–वंशीय प्रभापुंज से राष्ट्र को एक रखने में सक्षम हैं। यह वर्ग सोचता है कि हमारा चाहे कोई जनाधार हो या न हो, पर इसी चाटुकारिता के सोपान पर चढ़ कर देश की बागडोर सँभालने का अवसर हमको ही मिलेगा।

एक वर्ग वह भी है जो धर्मनिरपेक्षता के नारे की आड़ में बुद्धिजीविता की चाशनी मिलाकर कहता है कि गैर–हिन्दू होना ही राष्ट्रीयता है, और हिन्दुत्व साम्प्रदायिकता का पर्याय है। शाहबुद्दीन जब ***'मुस्लिम इंडिया'*** पत्र निकालते हैं, तो वे राष्ट्रीय हैं, और जब भाजपा वाले 'हिन्दू इंडिया' की बात करते हैं, तो वे साम्प्रदायिक हैं। शाहबुद्दीन तो यह भी कहते हैं कि जब मुसलमानों से कहा जाता है कि राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल हों, तो वह मुख्यधारा क्या है, यह हम नहीं जानते।

शाहबुद्दीन तो पढ़े–लिखे हैं, आई. ए.एस. हैं, वे मैक्समूलर की What India Can Teach Us किताब ही पढ़ लेते। फिर भी क्या वे नहीं जानते कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त, वेदों से लेकर 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' तक, उपनिषदों से लेकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के औपनिषदिक साहित्य तक, वैदिक संस्कृत से लेकर समस्त भारतीय भाषाओं की अभिव्यक्ति तक जो एक अविच्छिन्न धारा निरन्तर बहती चली आ रही है, वही इस देश की मुख्यधारा है? विभिन्न देशों से आने वाले परदेसियों को जिस देश ने अपने अंक में समेटकर एक सहिष्णुता की सामाजिक मर्यादा स्थापित की है, क्या वह मुख्यधारा नहीं है? क्या इतिहास में तुमने कभी मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त और चाणक्य का, पुष्यमित्र और पतंजलि का, शकारि विक्रमादित्य का, हूण–मानमर्दनकारी समुद्रगुप्त का नाम नहीं सुना? फिर तुम्हारे राष्ट्रीय ध्वज में अशोक का चक्रचिह्न कहाँ से आ गया?

एक बार डा. जाकिर हुसैन जैसे राष्ट्रवादी नेता ने, जो जामिया मिलिया के संस्थापकों में माने जाते हैं, स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान के कई वर्ष पश्चात् कहा था कि 'गुरुकुल कांगड़ी सही रूप में राष्ट्रीय संस्था नहीं है, असली राष्ट्रीय संस्था तो जामिया मिलिया है।' तब आचार्य अभयदेव जी गुरुकुल के आचार्य थे। उन्होंने इसका ऐसा सटीक और युक्तियुक्त उत्तर दिया था कि तथाकथित समस्त राष्ट्रवादी नेताओं की बोलती बन्द हो गई थी। जिस जामिया मिलिया में भारत पर आक्रमण करने वाले बाबर की 500वीं जयन्ती मनाई जाए, उसे कौन राष्ट्रीय संस्था कहेगा?

स्वामी श्रद्धानन्द को साम्प्रदायिक कहने वाले निश्चित रूप से राष्ट्रवाद का सही अर्थ नहीं समझते और न ही उनके मन में राष्ट्र की सही अवधारणा है। उनके बलिदान के पश्चात् स्वयं महात्मा गांधी ने उनके सम्बन्ध में जो लेख लिखा था उसमें यह स्पष्ट किया कि स्वामी जी में मुस्लिम–विद्वेष बिल्कुल नहीं था। डॉ. अन्सारी उनके निजी चिकित्सक थे। हकीम अजमल खाँ से उनकी घनिष्ठ मैत्री थी। 'हम' शब्द की जो व्याख्या स्वामी जी ने की थी – 'ह' से हिन्दू और 'म' से मुसलमान – इन दोनों को मिलाकर ही 'हम' शब्द बनता है। इससे बढ़कर उनकी उदारता का और राष्ट्रीयता का और क्या सबूत हो सकता है ? तुर्की में कमालपाशा की विजय पर उन्होंने अपने निवास पर दिवाली मनाई थी। तब किसी ने उनसे कहा था कि यह आप क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा था 'कमालपाशा असली राष्ट्रवादी है। मैं सभी राष्ट्रवादी मुलसमानों का आदर करता हूँ पर जो अन्दर से साम्प्रदायिक हैं और बाहर से राष्ट्रीयता का खोल ओढ़े रखते हैं, मैं उनकी प्रशंसा नहीं कर सकता।'

स्वामी श्रद्धानन्द के राष्ट्रवादी स्वरूप को हमारे राजनीतिक नेता कब समझेंगे? इस विषय पर इतना ही कहना काफी है। अन्यथा इस विषय में हमारे पास कहने को बहुत कुछ है।

'आर्यजगत्'
29 दिसम्बर 1991

ईश्वर का सर्वोत्तम नाम-ओम् (ओ३म्)

{महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ-प्रकाश के महत्त्वपूर्ण अंश संकलक : भावेश मेरजा}

(ओ३म्) जो यह ओङ्कार शब्द है, यह परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो **अ, उ** और **म्** तीन अक्षर हैं, वे मिलकर एक (ओम्) समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे – अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। वेदादि सत्यशास्त्रों में उसका ऐसा ही स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरण–अनुकूल ये सब नाम परमेश्वर के ही हैं।

अब जिस प्रकार विराट् आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है, वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाणे जानो –

अथ 'ओङ्कार'–अर्थः

1. **विराट्**–'वि' उपसर्गपूर्वक **'राजृ दीप्तौ'** इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से **'विराट्'** शब्द सिद्ध होता है। **'यो विविधं नाम चराऽचरं जगद्–राजयति प्रकाशयति स विराट्'** = विविध अर्थात् जो बहु प्रकार के (चराचर) जगत् को प्रकाशित करे, इससे **'विराट्'** नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है।
2. **अग्नि – अंचु गतिपूजनयोः, अग, अगि, इण् गत्यर्थक** धातुयें हैं, इनसे **'अग्नि'** शब्द सिद्ध होता है। **'गतेस्त्रयोऽर्थाः–ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः।' 'योऽंचति, अच्यतेऽगत्यङ्गतिएति वा सोऽयमग्निः'** = जो ज्ञान–स्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा के योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'अग्नि'** है।
3. **विश प्रवेशने** इस धातु से **'विश्व'** शब्द सिद्ध होता है। **'विशन्ति प्रविष्टानि भवन्ति सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन्, यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः'** = जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'विश्व'** है।

इत्यादि नामों का ग्रहण अकार से होता है।

4. **'हिरण्यगर्भ'** –

'ज्योतिर्वै हिरण्यं, तेजो वै हिरण्यम् इत्यैतरेय–शतपथब्राह्मणे' (ऐतरेय ब्राह्मण 7.12, शतपथ ब्राह्मण 6.7.1.2) अथवा **'यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः'** = जिसमें सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार में रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजः स्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम (उत्पत्ति) और निवास–स्थान है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'हिरण्यगर्भ'** है।

5. **वायु – वा गतिगन्धनयोः** इस धातु से **'वायु'** शब्द सिद्ध होता है। **(गन्धनं हिसनम्)। 'यो वाति चराऽचरं जगद्–धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः'** = जो चराचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता है और सब बलवानों से बलवान् है, इससे उस ईश्वर का नाम **'वायु'** है।
6. **तैजस – तिज निशाने** इस धातु से **'तेजः'** और इससे तद्धित करने से **'तैजस'** शब्द सिद्ध होता है। **(यः तेजोमयः तेजसां सूर्यादीनां च प्रकाशकः सः तैजस)** जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करनेवाला है, इससे ईश्वर का नाम 'तैजस' है।

इत्यादि नामार्थ उकार से ग्रहण होते हैं।

7. **ईश्वर – ईश ऐश्वर्ये** इस धातु से 'ईश्वर' शब्द सिद्ध होता है। **'य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः'** = जिसका सत्य विचार, शील, ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम **'ईश्वर'** है।
8. **आदित्य – दो अवखण्डने, (अवखण्डनंनामविनाशः)** इस धातु से 'अदिति' और इससे तद्धित करने से **'आदित्य'** शब्द सिद्ध होता है। **'न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः, अदितिरेव आदित्यः'** = जिसका विनाश कभी न हो (उसका नाम अदिति है, अदिति ही आदित्य है, इससे) उसी ईश्वर की **'आदित्य'** संज्ञा है।
9. **प्राज्ञ–ज्ञा अवबोधने, 'प्र'**–पूर्वक इस धातु से 'प्रज्ञ' और इससे तद्धित करने से 'प्राज्ञ' शब्द सिद्ध होता है। **'यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञः'** = जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सब चराचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है, (वह प्रज्ञ है, प्रज्ञ ही प्राज्ञ कहाता है), इससे उसी ईश्वर का नाम **'प्राज्ञ'** है।

इत्यादि नामार्थ मकार से गृहीत होते हैं।

जैसे एक–एक मात्रा से तीन–तीन अर्थ यहाँ व्याख्यात किये हैं, वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओङ्कार से जाने जाते हैं।

सच्चिदानन्द–स्वरूप

(अस भुवि) इस धातु से 'सत्' शब्द सिद्ध होता है। **'यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म'** = जो सदा वर्त्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान कालों में जिसका बाध न हो, उस परमेश्वर को 'सत्' कहते हैं।

(चिती संज्ञाने) इस धातु से 'चित्' शब्द सिद्ध होता है। **'यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनः तच्चित्परं ब्रह्म'** = जो चेतन–स्वरूप है तथा सब सज्जन जीवों और योगियों को चेताने और सत्य–असत्य का जनानेवाला है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'चित्'** है।

टुनदि समृद्धौ, आङ्पूर्वक इस धातु से **'आनन्द'** शब्द बनता है। **'आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा यः सर्वाजीवानानन्दयति स आनन्दः'** = जो आनन्दस्वरूप, जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते और सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है, इससे ईश्वर का नाम 'आनन्द' है।

इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर को **'सच्चिदानन्द– स्वरूप'** कहते हैं।

ईश्वर के अन्य कुछ प्रसिद्ध नाम

गणेश वा **गणपति – गण संख्याने,** इस धातु से 'गण' शब्द सिद्ध होता है, इसके आगे 'ईश' वा 'पति' शब्द रखने से 'गणेश' और 'गणपति शब्द' सिद्ध होते हैं। **'ये प्रकृत्यादयो जडा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा स गणेशो गणपति वा'** = जो प्रकृत्यादि जड़ और जीव आदि सब प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करनेवाला है, इससे उस ईश्वर का नाम **'गणेश'** वा **'गणपति'** है।

ब्रह्मा – बृह बृहि वृद्धौ, इन धातुओं से **'ब्रह्मा'** शब्द सिद्ध होता है। **'योऽखिलं जगत् निर्माणेन बर्हति (बृंहति) वर्द्धयति स ब्रह्मा'**=जो सम्पूर्ण जगत् को रचके बढ़ाता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'ब्रह्मा'** है।

विष्णु – विष्लृ व्याप्तौ, इस धातु से 'नु' प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है। **'वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः परमात्मा'** = चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम **'विष्णु'** है।

शिव – शिवु कल्याणे, इस धातु से **'शिव'** शब्द सिद्ध होता है। **'बहुलमेतन्निदर्शनम्',** (धातुपाठ, चुरादिगण) इससे **'शिवु'** धातु माना जाता है, जो स्वयं कल्याणस्वरूप है और सबका कल्याण करनेवाला है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'शिव'** है।

ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं, परन्तु इनसे भिन्न भी परमात्मा के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण–कर्म–स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम हैं। उनमें से प्रत्येक गुण–कर्म–स्वभाव का एक–एक नाम है। इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं; क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण–कर्म–स्वभाव व्याख्यात किये हैं। उनके पढ़ने–पढ़ाने से उनका बोध हो सकता है, और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं।

परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्री आदि के 'धनपति' आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि (परमेश्वर के नाम) कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं।

ईश्वर का नाम–स्मरण

किसी एक वैरागी के दो चेले थे। वे प्रतिदिन गुरु के पग दाबा करते थे। एक ने दाहिने पग और दूसरे ने बाएँ पग की सेवा करना बाँट लिया था। एक दिन एक चेला कहीं गया था और दूसरा अपने सेव्य पग की सेवा कर रहा था। इतने में गुरु ने करवट फेरी तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा। उसने ले डण्डा पग पर धर मारा। गुरु ने कहा – 'अरे दुष्ट ! तूने यह क्या किया ?' चेला बोला – 'मेरे सेव्य पग के ऊपर यह पग क्यों आ चढ़ा ?' इतने में दूसरा चेला आया। वह भी अपने सेव्य पग की सेवा करने लगा। देखा तो पग सूजा पड़ा है। गुरु से पूछा – 'यह मेरे सेव्य पग में क्या हुआ ?' गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला – न चाला। चुपचाप डण्डा उठाकर बड़े बल से गुरु के दूसरे पग में मारा। तो गुरु ने उच्च स्वर से पुकार मचाई। तब तो दोनों चेले डण्डा लेके गुरु के पगों को पीटने लगे। तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सुनकर आये। उनमें से किसी बुद्धि मान् पुरुष ने साधु को छुड़ाया। पश्चात् उन दोनों मूर्ख चेलों को उपदेश किया कि – 'देखो, ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं। उन दोनों की सेवा करने से उसी को सुख और दुःख देने से उसी एक को दुःख होता है।'

जैसे एक गुरु की सेवा में चेलों ने लीला की, इसी प्रकार जो एक अखण्ड, सच्चिदानन्द–अनन्त–स्वरूप परमात्मा

के विष्णु, रुद्रादि अनेक नाम हैं, इन नामों का अर्थ जैसा कि (सत्यार्थ–प्रकाश के) प्रथम समुल्लास में प्रकाश कर आये हैं, उस सत्यार्थ को न जानकर शैव, शाक्त, वैष्णवादि सम्प्रदायी लोग परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते हैं। मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धि को फैला कर नहीं विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रुद्र, शिव आदि नाम एक अद्वितीय, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर के अनेक गुण–कर्म–स्वभावयुक्त होने से उसी के वाचक हैं। भला, क्या ऐसे लोगों पर ईश्वर का कोप न होता होगा ?

नामस्मरण इसको कहते हैं कि – **यस्य नाम महद्यशः।** (यजुर्वेद 32.3) परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है। जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म = सबसे बड़ा, परमेश्वर = ईश्वरों का ईश्वर, ईश्वर = सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी = कभी अन्याय नहीं करता, दयालु = सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान् = अपने सामर्थ्य से ही सब जगत् की उत्पत्ति– स्थिति–प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता; ब्रह्मा = विविध जगत् के पदार्थों का बनानेवाला, विष्णु = सबमें व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव = सब देवों का देव, रुद्र = प्रलय करनेवाला आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, समर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाए, अधर्म कभी न करे, सब पर दया रखे, सब प्रकार के साधनों में समर्थ हो, शिल्प–विद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख–दुःख समझे, सबकी रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म करनेवालों को प्रयत्न से दण्ड देवे और सज्जनों की रक्षा करे। इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव के अनुकूल अपने गुण–कर्म–स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है।

मो. 9879528247

☞ पृष्ठ 04 का शेष

प्रभु-भक्ति का ...

सकता है? परमात्मा की पूजा बच्चों का खेल नहीं है।

प्रश्न–कोई ऐसा सरल सा लटका बताएँ कि जिसके जप से हम परमात्मा को पा सकें। कोई अत्यन्त सरल मन्त्र बता दें जिस का हम जाप किया करें।

उत्तर–पुण्य करना बड़ा कठिन है। किसी मन्त्र के जप मात्र से अथवा सरल से लटके से कोई ईश्वर भक्त नहीं बन सकता। हाँ ! स्वयं को धोखे में रख सकता है। यदि आप ऊँचा–ऊँचा बोल कर किसी मन्त्र का जप करेंगे तो लोग आपको प्रभुभक्त भले ही कहें आपका हृदय स्वयं साक्षी देगा कि आप खुदा की बजाए शैतान को, परमदेव की बजाए दानव को पूजते हैं क्योंकि आपके मन में दूसरों को दुःख देना, सत्य से दूर भागना, लोभ, वासना और न जाने क्या–क्या पाप भरे पड़े हैं। इनके होते हुए ईश्वर से प्रेम जैसी पवित्र भावना आपके हृदय में आ ही नहीं सकती।

दुआ कहना नहीं मुश्किल
दुआ करना नहीं आसां।
ज़माना लफ़्ज सुनता है,
खुदा दिल को परखता है।।

{यह पद्य भी उपाध्याय जी का स्वरचित है। 'जिज्ञासु'}

अर्थात् प्रार्थना (जप) कहना तो कठिन नहीं है और प्रार्थना (आचरण में) करना सरल नहीं है। संसार तो शब्दों को सुनता है और परमात्मा हृदय को जानता है। लोग चाहते हैं गन्दी बातें भी करें, गन्दे विचार भी रखें और गन्दे कर्म भी करें और परमात्मा की उपासना भी हो जाये। जब आप किसी अतिथि को घर पर आमन्त्रित करते हैं तो प्रथम अपने घर का कूड़ा कचरा हटाते हैं। यदि आप किसी के घर जाएँ और उसका घर मैले से भरा पड़ा हो तो आप नाक भौं सिकोड़ कर वहाँ से लौट आएँगे इसी प्रकार परमात्मा की उपासना के लिए स्वच्छ पवित्र मन चाहिए।

आपका हृदय परमात्मा का निवास है इसको गन्दा रखना मस्जिद व मन्दिर से गन्दा रखने से बड़ा पाप है।

मन मन्दिर में गाफिला
झाड़ू रोज लगाया कर।

जिस मन में ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, हिंसा, स्वार्थ का कूड़ा कर्कट भरा पड़ा है उसको दूर किये बिना या शुद्ध किये बिना आपको ईश्वर–दर्शन कर सकने का साहस ही कैसे होता है ? धूल वाले स्थूल दर्पण में तो सूर्य के प्रकाश का भी प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता अतः यदि आप प्रभु–भक्ति चाहते हैं तो महर्षि पतंजलि के उपदेशों पर विचार करना होगा और धीरे–धीरे उनका अभ्यास करना होगा। जो लोग देवी–देवताओं अथवा खुदा के नाम पर पशुओं की बलि देते हैं और निरपराध पशुओं का रक्तपात करते हैं वे हजार बार ईश्वर का नाम लें, कोई लाभ नहीं। परमात्मा से प्रेम करने से पूर्व पशुओं से प्रेम करना सीखना चाहिए। जो लड़का अपने भाइयों से लड़ता अथवा उनको दुःख देता है वह अपने पिता को कैसे प्रसन्न कर सकता है ?

यह ठीक है कि जिन बातों का हम ने ऊपर उल्लेख किया है, वे अति कठिन हैं परन्तु प्रभु की प्राप्ति भी तो कठिन कार्य है और जिन लोगों की समझ में यह आ जाये कि उस को पाने के लिये कोई सस्ता लटका जादू मन्त्र नहीं है। बिना परिश्रम किये ध्येय धाम पर पहुँचना असम्भव है। परिश्रम से धीरे–धीरे लक्ष्य की सिद्धि सम्भव है। यदि बाल्यकाल से अहिंसा का अभ्यास किया जाये अथवा सत्य भाषण सिखाया जाये तो हिंसा व झूठ से घृणा हो सकती है और हमारे मन पवित्र हो सकते हैं। संसार में लाखों मनुष्य ऐसे हैं जो किसी प्राणी को नहीं सताते, न ही अपने भोजन के लिये और न ही परमात्मा की तुष्टि करने के लिये, वे एक जीवन में नहीं तो कई जीवनों में श्रेष्ठ बन जाएँगे परन्तु जिन्होंने मार्ग की कठिनाइयों के डर से चलना ही नहीं सीखा वह निरन्तर गोते खाते रहेंगे और कभी परमात्मा की सच्ची भक्ति के योग्य नहीं हो सकते।

'गंगा ज्ञान सागर' से साभार

सिरस

इतिहास पेड़ों पर भी उगता है !

कुछ पेड़ों का पत्ता–पत्ता इतिहास रचा करता है। ऐसा ही एक पेड़ है 'सिरस' जिसका मूल नाम 'शिरीष' है। इसीके नाम पर सिरसा, सिरसी और सिरसपुरी जैसे विख्यात नगरों का नाम भी एक इतिहास बन चुका है। जहाँ–जहाँ सिरस उगेंगे, वहाँ–वहाँ इसके बीज, फूल, फल, पत्ते और शाखाएँ नये इतिहास उगाते रहेंगे क्योंकि, इसका ज़र्रा–ज़र्रा सोने–चाँदी से अधिक मूल्यवान् और अधिक उपयोगी होने पर भी मुफ्त में मिल जाता है। इमली जैसे पत्तों (अधिक लम्बे) और फलियोंवाला यह पेड़ कहीं भी उगाया जा सकता है। इन्सानों की तरह आप इसे गोरी, काली और पीली जातियों में बाँट सकते हैं, मगर यह पेड़ गोरे–काले, राजा–रंक या छोटे–बड़े में कोई भेद नहीं मानता। मनुष्यमात्र से प्यार करनेवाले काले भारतीयों के उजले दिल की तरह काला सिरस भी कुछ अधिक गुणकारी है, मगर बुनियादी तौर पर, इन्सानों की तरह, गोरे–काले सिरस के गुणों में भी कोई भेद नहीं।

किसानों का यह मूल धन रहा है !

शहरी लोग शायद ही जानते हों कि सिरस की लकड़ी शीशम की तरह लाल और मजबूत होती है। इस लकड़ी से किसानों के हल और पंचाली (पंजाली, जुना, पाँच डण्डों से बना घेरा जो बैलों के गले में डाला जाता है), तेलियों के कोल्हू और शहतीर तथा इमारती सामान तैयार होता है। हल और जुना न हो तो किसान खेतों की जुताई कैसे कर सकता है! इस आधुनिक यन्त्रों के युग में भी अधिकतर भारतीय किसानों के पास सदियों पुराना सस्ता और उपयोगी हल–जुना लकड़ी का ही है, यही उसका मूल धन है और इसी पर उसके परिवार का आधार है, इसीके भरोसे खेतों में अनाज–दालें पैदा होते हैं और इसीको खाकर आज का इन्सान ज़िन्दा है। एक तरह से सिरस हमारे राष्ट्रीय विकास की मूल कड़ियों में से एक है।

यूनानी भी सिरस पर जान छिड़कते हैं !

यूनानी हकीमों की राय में सिरस ***'फरियता पेड़'*** है क्योंकि इन्सान के दुःख–दर्द को यह चुटकियों में उड़ा देता है। हकीम मुहम्मद अब्दुल्ला ने 'खवास बरगद' (सिरस) की उपयोगिता के बारे में ऐसे–ऐसे किस्से बयान किये हैं कि रूह फड़क उठती है। दिमाग, आँख, कान, मुँह, गला, सीना, पेट, जाँच, पाँव, कौन–सा अंग है जिसपर सिरस कारगर न हो ! यही कारण है कि यूनानी हिकमत में सैकड़ों इलाज सिरस से ही किये जाते हैं। यह मैदानों में उगता है, मगर इलाज के तौर पर इसकी माँग बर्फीली पहाड़ी चोटियों पर भी बराबर रही है।

यह संसार को नयन– ज्योति बाँटता है !

आयुर्वेद की तरह यूनानी हिकमत ने भी डंके की चोट पर कहा है कि सिरस आँखों के मामले में बहुत मुफीद (लाभकारी) है। हकीम अब्दुल्ला ने मेरठ के एक शहजादे की बावत लिखा है कि उसकी दोनों आँखों में फोले उठ आए। लाख इलाज कराए, मगर बेसूद ! आखिर हकीम हादी हुसैन ने एक दवा तैयार करके शहजादे की आँखों में डाली और सिरस के पत्तों की भाप दिलाई। आयुर्वेद के उपचार से उस हकीम ने ऐसा नाम कमाया कि आज भी उसकी चर्चा जीवित है। और तो और, पशुओं के नेत्र रोगों की चिकित्सा भी सिरस से की जाती है। गाँवों में बच्चे भी जानते हैं कि आँखों की सबसे बढ़िया दवा 'सिरस' है।

पत्र/कविता

जागते रहो आर्यो ! जागते रहो.....

हठ धर्मी से धर्म बेधरम न बन जाय !
मक्कारी से मजहब मुहतरम न बन जाय !
लोभ से रिलीजन प्रोब्लम न बन जाय !
सारा देश मीनाक्षीपुरम् न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

वेष बदल करके रावण घूम रहे हैं।
सोने की लंका के लोग झूम रहे हैं।
दुःशासन शासन का मुँह चूम रहे हैं।
असुर–ससुर मचा धूम रहे हैं
कोई सीता–सावित्री मरियम न बन जाय !
मुहतरमा मुबीना मिस मैडम न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

सावधान रहना घर में बैठे चोर से
सावधान रहना अफवाहों के शोर से
शक्ति या दबाव या प्रभावाभाव में–
सावधान रहना कुछ पैसों के जोर से–
घर की रानी बुरके की बेगम न बन जाय !
घर का राजा रञ्जो–गम–अलम न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

न्याय–दण्ड से यदि उद्दण्ड डरेंगे
तो ये जरूरी है खेत सांड़ चरेंगे
दल बदलू तो सत्ता के सर–दर्द बन गये–
धर्म–बदल घर का सत्यानाश करेंगे
परिवर्तन का कार्यक्रम क्रम न बन जाय !
कर्म–काण्डी धर्म–कर्म भ्रम न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

हरिजन न हों तो सत्कर्म न होगा
हरिजन न हों तो हरि का मर्म न होगा
हरिजन रहेंगे वहाँ हरि भी रहेंगे–
हरिजन न हों तो कोई धर्म न होगा
हरिजन का सत्व कहीं कम न बन जाय !
राम नाम सत्य मरघटम् न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

नींव डगमगाई तो महल गिर जायेगा
समझदार इसको सुदृढ़तम बनायेगा
ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र कुछ भी समझ लें–
पैरों का महत्व सर से कम न आयेगा।
उच्चता ऊँचाई से अधम न बन जाय !
नीचता निचाई से उत्तम न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

'धर्म क्या है' इसका जिसको ध्यान नहीं है।
ऐसे परिवर्तन का कोई मान नहीं है।
फिर भी ऐसा लग रहा है आजकल हमें–
अपना हिन्दुस्तान हिन्द–स्थान नहीं है।
सीधा एकता में कहीं खम न बन जाय !
धर्म–ध्वजा मजहबी परचम न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

सर्व–धर्म ध्याने वाला देश हमारा।
सबको सुख पहुँचाने वाला देश हमारा।
मित्रता निभाने वाला देश हमारा।
विश्व गुरु कहलाने वाला देश हमारा।
सत्यं शिवं सुन्दरम् से तम न बन जाय !
प्यार की छमाछम धमाधम न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

सावधान युग के अवतारो ! सावधान !
छूत और अछूत के विचारो ! सावधान !
सावधान वोटों की सरकारो ! सावधान !
सावधान गद्दी के गद्दारो ! सावधान!
सीधा सादा हरिजन कठिनतम न बन जाय !
बमबम भोलेनाथ कहीं बम न बन जाय !
सारा देश मीनाक्षीपुरम् न बन जाय !
जागते रहो आर्यो ! जागते रहो।

– निर्भय हाथरसी
'भारत को हिन्दू (आर्य) राज्य घोषित करो' से साभार

विश्वंभर दयाल

देश की आज़ादी में राजस्थान के अलवर जिले के राठ क्षेत्र का बड़ा योगदान रहा है। देश के महान क्रान्तिकारी योद्धा अंग्रेज़ों से लड़ाई के दौरान बहरोड में आकर न सिर्फ शरण लेते थे, बल्कि वहाँ गुप्त मंत्रणा करने और हथियार चलाने के अभ्यास के साथ बम बनाने का प्रयोग भी करते थे। उनके उन अभियानों में स्थानीय क्रान्तिकारी पंडित विश्वंभर दयाल की बड़ी भूमिका थी जिन्हें क्रान्तिकारी अपना बड़ा भाई मानते थे। विश्वंभर दयाल ने अंग्रेज़ों द्वारा दिए ऊँचे पद को छोड़कर देश की आज़ादी के लिए योगदान करने का कठिन जोखिम भरा रास्ता चुना था। पंडित विश्वंभर दयाल वर्ष 1893 में बहरोड़ के सबलपुरा गाँव में पैदा हुए थे, जो अब एक मोहल्ला है। बचपन से ही वे पढ़ने–लिखने में कुशाग्र थे। कम उम्र में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई। वैसे में मेधावी विश्वंभर दयाल की आगे की पढ़ाई की समस्या आ खड़ी हुई। उनके दादा उन्हें दिल्ली ले आए तब वह राजधानी के गाडोलिया बैंक में नौकरी करते थे। अपनी प्रतिभा व परिश्रम के बल पर विश्वंभर दयाल ने स्नातक की पढ़ाई की, जो उस समय बहुत बड़ी योग्यता थी। इस योग्यता के बूते अगर वह चाहते तो ब्रिटिश दौर में मोटी तनख्वाह की नौकरी हासिल कर बहुत आराम से अपना जीवन बिता सकते थे। उनके सामने इसका अवसर आया भी लेकिन स्कूली जीवन से ही क्रान्ति का रास्ता उन्हें आकर्षित करता था। वर्ष 1912 में उन्नीस साल की उम्र में वे क्रांतिकारी बन गए थे।

वर्ष 1912 में दिल्ली में वायसराय लॉर्ड हार्डिंग के जुलूस पर क्रांतिकारियों ने बम फेंका था। क्रान्तिकारियों के उस हमले से वायसराय तो बच गए लेकिन उनका महावत मारा गया था। उस क्रान्तिकारी अभियान में विश्वंभर दयाल की भूमिका भी थी। उसके बाद ब्रिटिश पुलिस और खुफिया विभाग पंडित विश्वंभर दयाल के पीछे लग गए। बम फेंकने के जुर्म में उन्हें फाँसी की सजा मुकर्रर की गई लेकिन वर्षों तक वह अंग्रेज़ों के हाथ नहीं आए। उसी बीच वह रेवोल्यूशनरी पार्टी से जुड़ गए और चंद्रशेखर आजाद तथा भगत सिंह के संपर्क में आए। क्रांतिकारियों द्वारा गाडोलिया बैंक की लूट में भी विश्वंभर दयाल की भूमिका थी। नेताजी सुभाष चंद्र बोस से लेकर भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव और चंद्रशेखर आजाद तक उनसे मिलने और समय बिताने बहरोड़ आते थे।

1931 में आमने–सामने की मुठभेड़ में वे शहीद हो गए।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

उरुं नो लोकमनुनेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपक्षयेम शरणा बृहन्ता॥
अथर्व. 19.15.4